श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

युगलगीत भागवत मुखस्थ परीक्षा हेतु

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

॥ अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो,
वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं(ङ्),
गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ 1 ॥

व्योमयानवनिताः(स्) सह सिद्धैर्-
विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः(ख्),
कश्मलं(यँ) ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ 2 ॥

श्री-गोप्यः ऊचुः– गोपियों ने कहा; वाम– बायीं; बाहु— भुजा पर; कृत— रखकर; वाम– बाएँ; कपोलः– गाल को; वल्गित—हिलती हुई; भ्रुः– भौंहें; अधर– होंठों पर; अर्पित— रखी; वेणुम्– बाँसुरी को; कोमल- सुकुमार; अङ्गुलिभिः- अपनी अँगुलियों से; आश्रित-मार्गम्- बन्द किये गये छेद; गोप्यः– हे गोपियो; ईरयति— बजाते हैं; यत्र— जहाँ; मुकुन्दः- कृष्ण; व्योम- आकाश में; यान- विचरण करती; वनिताः– स्त्रियाँ; सह– साथ; सिद्धैः- सिद्ध देवताओं के; विस्मिताः- चकित; तत्— उसे; उपधार्य– सुनकर; स– सहित; लज्जाः-लाज; काम— कामवासना का; मार्गण- पीछा करते; समर्पित- अर्पित; चित्ताः– उनके मन; कश्मलम्- कष्ट; ययुः- अनुभव किया; अपस्मृत- भूलकर; नीव्यः– कमरबंध.

गोपियाँ आपसमें कहतीं- अरी सखी! अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालों तकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदो पर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही

चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभर में ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बातकी भी सुध नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ।

हन्त चित्रमबलाः(श्) शृणुतेदं(म्),

हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।

नन्दसूनुरयमार्तजनानां(न्),

नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ 3॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो,

वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।

दन्तदष्टकवला धृतकर्णा,

निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ 4॥

हन्त— ओह; चित्रम्— आश्चर्य; अबलाः– हे बालाओ; शृणुत- सुनो; इदम्– यह; हार– गले के हार सदृश; हासः—हँसी; उरसि—वक्षस्थल पर; स्थिर– अचल; विद्युत्– बिजली; नन्द- सूनुः– नन्द महाराज का पुत्र; अयम्—यह; आर्त– दुखी; जनानाम्- मनुष्यों के लिए; नर्म– प्रसन्नता का; दः- देने वाला; यर्हि– जब; कूजित– ध्वनित; वेणुः- वंशी; वृन्दशः–झुंडों में; व्रज- चरागाह में रखे गये; वृषाः– बैल; मृग– हिरण; गावः– गाएँ; वेणु– बाँसुरी के; वाद्य– बजाने से; हृत— चुराये गये; चेतसः- मन; आरात्- दूरी पर; दन्त- अपने दाँतों से; दष्ट- काटा गया; कवलाः– कौर; धृत– खड़ा किये हुए; कर्णाः– अपने कान; निद्रिताः– सुप्त; लिखित- अंकित; चित्रम्- चित्र; इव– सदृश; आसन्— थे ।

हे गोपियो ! तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो, ये जो नन्द का नन्दन है ना बहुत ही सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, सफेद मोती-सी चमकने लगती है। और सुन उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए, हारमें हास्यकी किरणे चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुःखीजनोंको सुख देनेके लिये विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब के झुंड के झुंड बैल,गाय और हिरन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी! दाँतोंसे चबाया हुआ घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो जेसे सो ही गये हो या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्-

बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।

कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्-

गाः(स्) समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ 5॥

तर्हि भग्नगतयः(स्) सरितो वै,

तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।

स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः(फ्),

प्रेमवेपितभुजाः(स्) स्तिमितापः ॥ 6॥

बर्हिण- मोरों के; स्तबक- पंखों से; धातु- रंगीन खनिज; पलाशैः- तथा पत्तियों से; बद्ध- व्यवस्थित; मल्ल- कुश्ती लड़ने वाले या पहलवान का; परिबर्ह— वेश; विडम्बः- अनुकरण करने वाला; कर्हिचित्— कभी कभी; स-बलः- बलराम सहित; आलि— हे गोपी; सः– वह; गोपैः- ग्वालबालों के साथ; गाः– गौवों को; समाह्वयति- बुलाता है; यत्र- जब; मुकुन्दः—मुकुन्द; तर्हि– तब; भग्न— टूटी; गतयः– उनकी गति, सरितः- नदियाँ; वै– निस्सन्देह; तत्—उसके; पद-अम्बुज- चरणकमलों की; रजः- धूलि; अनिल - वायु से; नीतम् – लाई हुई; स्पृहयती:- लालसा करती हुई; वयम्— हम सब ; इव- जिस तरह; अबहु– कुछ कुछ; पुण्याः- पुण्यकर्म; प्रेम– भगवत्प्रेम के कारण; वेपित— काँपती; भुजाः- बाहें; स्तिमित- रुक गया; आपः– जल ।

हे सखि! जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिर पर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली बालोमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग अङ्ग रंग लेते हैं और नये-नये पत्तो से ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालवालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो! नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती तो हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायें, परन्तु सखियो ! वे भी हमारे ही जैसी मन्दभागिनी है। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती और जड़तारूप का उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे नदीयाँ भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते- काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं

अनुचरैः(स्) समनुवर्णितवीर्य,

आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।

वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्-

वेणुनाऽऽह्वयति गाः(स्) स यदा हि ॥ 7॥

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं(वँ),

व्यं(ञ्)जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।

प्रणतभारविटपा मधुधाराः(फ्),

प्रेमहृष्टतनवः(स्) ससृजुः(स्) स्म ॥ 8॥

जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्यो के स्वामी भगवान नारायणकी शक्तियोंका गान करते हैं, वैसे ही ये ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और वेणु बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हो, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान विष्णुको अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे खील उठती है, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब की सब मधुधाराएँ उढेलने लगती हैं

दर्शनीयतिलको वनमाला-

दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।

अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-

माद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ॥ 9॥

सरसि सारसहं(म्)सविहङ्गाश्-

चारुगीतहृतचेतस एत्य ।

हरिमुपासत ते यतचित्ता,

हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ 10॥

अनुचरैः–साथियों के द्वारा; समनुवर्णित- विस्तार से वर्णित होकर; वीर्यः– पराक्रम; आदि-पूरुषः– आदिपुरुष; इव- सदृश; अचल — स्थिर; भूतिः- ऐश्वर्य; वन– वन में; चरः- इधर-उधर घूमते; गिरि – पर्वतों के; तटेषु— पार्श्व में, तराई में; चरन्तीः– चरती हुई; वेणुना- अपनी बाँसुरी से; आह्वयति– बुलाता है; गाः– गौवों को; सः– वह; यदा—जब; हि निस्सन्देह; वन-लताः– जंगल की लताओं; तरवः - तथा वृक्षों ने; आत्मनि– अपने में; विष्णुम्– भगवान् विष्णु को; व्यञ्जयन्त्य- प्रकट करते हुए; इव- मानो; पुष्प– फूलों; फल-तथा फलों से; आढ्याः– सम्पन्न; प्रणत– झुके हुए; भार- भार से; विटपाः – डालें; मधु- मधुर रस की; धाराः- धाराएँ; प्रेम- प्रेम से; हृष्ट– रोमांचित; तनवः- शरीर; ववृषुः-स्म - वर्षा की; दर्शनीय- देखने में आकर्षक लोगों में; तिलकः- सर्वश्रेष्ठ; वन-माला- जंगल के फूलों से बनी माला पर; दिव्य–अलौकिक; गन्ध– सुगन्ध; तुलसी– तुलसी के फूलों की; मधु- शहद जैसी मिठास से; मत्तैः– प्रमत्त; अलि- भौंरों के; कुलैः– झुंडों से; अलघु– प्रबल; गीतम्— गायन; अभीष्टम् – इच्छित; आद्रियन्— कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए; यर्हि—जब; सन्धित—रखा; वेणुः- अपनी बाँसुरी; सरसि- झील में; सारस- सारस पक्षी; हंस- हंस; विहङ्गाः- तथा अन्य पक्षी; चारु—मनोहर; गीत- गीत से; हृत– चुराये गये; चेतसः– मन; एत्य– आगे आकर; हरिम्– भगवान् कृष्ण को; उपासत — पूजा करते हैं; ते– वे; यत- वश में; चित्ताः– मन; हन्त– हाय; मीलित– बन्द; दृशः– उनकी आँखें; धृत- धारण किया हुआ; मौनाः- मौन |

अरी सखी! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखने योग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं- ये हमारे मनमोहन। उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है–बस, देखती ही जाओ। गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वनमाला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के झुंड भौरें बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्होंके स्वरमें स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय सखि ! उस मुनिजन मोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त को एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं–मानो कोई विहङ्गमवृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है !

सहबलः(स्) स्रगवतं(म्)सविलासः(स्),

सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।

हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण,

जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ 11॥

महदतिक्रमणशं(ङ्)कितचेता,

मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।

सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्-

छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥ 12॥

सह-बलः—बलराम के साथ; **स्रक्**- फूल की माला; **अवतंस**- सिर पर आभूषण की तरह; **विलासः** - खेलखेल में पहनकर; **सानुषु**– तलहटी में; **क्षिति-भृतः**- पर्वत की; **व्रज-देव्यः**- हे वृन्दावन की देवियो; **हर्षयन्** – हर्ष उत्पन्न करते हुए; **यर्हि**– जब; **वेणु**- उनकी वंशी की; **रवेण**- प्रतिध्वनि से; **जात - हर्षः**- हर्षित होकर; **उपरम्भति**– आस्वादन कराते हैं; **विश्वम्**—सारे जगत को; **महत्**— महापुरुष के; **अतिक्रमण**– अवमानना; **शङ्कित**— डरा हुआ; **चेताः**– मन में; **मन्द-मन्दम्**- अत्यन्त धीरे धीरे; **अनुगर्जति**— बदले में गरजता है; **मेघः**- बादल; **सुहृदम्**- अपने मित्र के ऊपर; **अभ्यवर्षत्**- वर्षा करता है; **सुमनोभिः**– फूलों से; **छायया**– अपनी छाया से; **च**– तथा; **विदधत्**— प्रदान करते हुए; **प्रतपत्रम्**- सूर्य से रक्षा के लिए छाता ।.

अरी व्रजदेवियो ! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगतको हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं–बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं– उस समय श्याम बादल बाँसुरीकी तानके साथ मन्द मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूं और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। सखी! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम

लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही न्यौछावर कर देता है– नन्हीं-नन्हीं फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं

विविधगोपचरणेषु विदग्धो,

वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।

तव सुतः(स्) सति यदाधरबिम्बे,

दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥ 13॥

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः(श्),

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।

कवय आनतकन्धरचित्ताः(ख्),

कश्मलं(यँ) ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ 14॥

विविध– अनेक; गोप-ग्वालों के; चरणेषु– कार्यों में; विदग्धः- पटु; वेणु- वंशी के; वाद्ये- बजाने में; उरुधा- कई गुना; नि— अपनी; शिक्षाः– जिसकी शिक्षाएँ; तव– तुम्हारा ; सुतः– बेटा; सति- हे पवित्र स्त्री; यदा– जब ; अध — होंठों पर; बिम्बे– बिम्ब फलों जैसे लाल; दत्त- रखी हुई; वेणुः- वंशी; अनयत्— ले आया; स्वर- संगीत ध्वनि की; जातीः– जातियाँ; सवनशः- उच्च, मध्यम तथा निम्न आरोहों से; तत्– उसे; उपधार्य– सुनकर; सुर- ईशाः– मुख्य देवता; शक्र– इन्द्र; शर्व– शिवजी; परमेष्ठि- तथा ब्रह्मा; पुरः-गाः- आदि; कवयः- विद्वान; आनत- झुका लिया; कन्धर- गर्दनें; चित्ताः- तथा मन; कश्मलम् ययुः- मोहित हो गये; अनिश्चित- निश्चय कर पाने में असमर्थ; तत्त्वाः- सार ।

हे सतीशिरोमणि यशोदाजी! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालोंके साथ खेल खेलने में बड़े निपुण हैं। हे रानीजी ! तुम्हारे लाड़ले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने आप ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने बिम्बा फल सदृश लाल-लाल अधरों पर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी जो सर्वज्ञ है वेभी उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकने पर भी उनके हाथसे निकलकर वंशीध्वनिमे तल्लीन हो ही जाता है, उनका सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-

नीरजां(ङ्)कुशविचित्रललामैः ।

व्रजभुवः(श्) शमयन् खुरतोदं(वँ),

वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ 15॥

व्रजति तेन वयं(म्) सविलास,

वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।

कुजगतिं(ङ्) गमिता न विदामः(ख्),

कश्मलेन कबरं(वँ) वसनं(वँ) वा ॥ 16॥

निज— अपने; पद-अब्ज- चरणकमलों के; दलैः- फूलों की पंखड़ियों जैसे;-पताका; वज्र- वज्र; नीरज– कमल; अङ्कुश- तथा अंकुश का; विचित्र- भाँति भाँति के; ललामैः– चिह्नों से; व्रज- व्रज की; भुवः- भूमि को; शमयन्– शान्त करते हुए; खुर— गाय के खुरों से; तोदम्- पीड़ा; वर्ष्म- अपने शरीर से; धुर्य- जिस तरह हाथी की; गतिः- चाल; ईडित- प्रशंसित; वेणुः- जिसकी वंशी; व्रजति- चलता है; तेन– उससे; वयम्– हम; सविलास- क्रीड़ायुक्त; वीक्षण- चितवन से; अर्पित— अर्पित; मनः- भव- कामवासना का; वेगाः- मंथन; कुज- वृक्षों जैसी; गतिम्- चाल; गमिताः—प्राप्त किया हुआ; न विदामः- हम नहीं जान पातीं; कश्मलेण- अपने मोह के कारण; कवरम्— चोटी; वसनम्— अपने वस्त्र; वा— अथवा ।

उनके चरणकमलोमे ध्वजा, वज्र, कमल, अङ्कुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न है। जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगतिसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमके, मिलनकी आकांक्षा का आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड़ वृक्ष हो। हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपर वस्त्र उतर गया है या है

मणिधरः(ख्) क्वचिदागणयन् गा,

मालया दयितगन्धतुलस्याः ।

प्रणयिनोऽनुचरस्य कदां(म्)से,

प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ 17॥

क्वणितवेणुरववं(ञ्)चितचित्ताः(ख्),

कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।

गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो,

गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ 18॥

मणि– मणियों की; धरः- धारण किये; क्वचित्— कहीं; आगणयन– गिनते हुए; गाः– गौवों को; मालया– फूलों की माला से; दयित— अपनी प्रिया; गन्ध- सुगन्ध पाकर; तुलस्याः– तुलसी के फूल जिनपर; प्रणयिनः– प्रेमी; अनुचरस्य- संगी का; कदा– किसी समय; अंसे- कंधे पर; प्रक्षिपन्– फेंकते हुए; भुजम्— अपनी बाँह; अगायत— गाया; यत्र– जब; क्वणित– बजायी हुई; वेणु- बाँसुरी की; रव- ध्वनि से; वञ्चित– चुराये गये; चित्ताः- हृदय; कृष्णम्– कृष्ण के; अन्वसत—निकट बैठ गईं; कृष्ण- काले हिरण की; गृहिण्यः- पत्नियाँ; गुण-गण- समस्त गुणों के; अर्णम्– समुद्र; अनुगत्य– पास आकर; हरिण्यः– हिरनियाँ; गोपिकाः– गोपियाँ; इव– सदृश्य; विमुक्त– त्यागकर; गृह— घर तथा परिवार की; आशाः- अपनी आशाएँ ।

अरी सखी ! श्रीकृष्ण के गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मृगो की पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्द नन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती है, घर लौटने का नाम भी नहीं लेतीं ।।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो,

गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।

नन्दसूनुरनघे तव वत्सो,

नर्मदः(फ्) प्रणयिनां(वँ) विजहार ॥ 19॥

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं(म्),

मानयन् मलयजस्पर्शेन ।

वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये,

वाद्यगीतबलिभिः(फ्) परिवव्रुः ॥ 20॥

कुन्द–चमेली के फूलों की; दाम- माला से; कृत— बनायी गई; कौतुक- क्रीड़ापूर्ण; वेषः– वेशभूषा; गोप– गोपबालों द्वारा; गोधन– तथा गायों द्वारा; वृतः- घिरा हुआ; यमुनायाम्– यमुना के तट पर; नन्द-सूनुः– नन्द महाराज का बेटा; अनघे– हे निष्पाप महिला; तव- तुम्हारा; वत्सः- लाड़ला बेटा; नर्म-दः- मनोरंजन कराने वाला; प्रणयिणाम्- अपने प्रिय संगियों के; विजहार- खेल चुका है; मन्द - धीमी; वायुः- वायु; उपवाति- बहती है; अनुकूलम्- अनुकूल; मानयन्— आदर दिखलाते हुए; मलय-ज- चन्दन के; स्पर्शेन- स्पर्श से; वन्दिनः- प्रशंसा करने वाले; उसको; उपदेव- लघु देवता की; गणाः– विभिन्न कोटियों के सदस्य; ये– जो; वाद्य– वाद्य यंत्रों वाले संगीत; गीत— गायन; बलिभिः– तथा उपहारों सहित; परिवव्रुः— घेर लिया है ।

हे नन्दरानी यशोदाजी ! वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाडले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह तरहसे हास-परिहासके द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा

लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी भेंटे देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं

वत्सलो व्रजगवां(यँ) यदगध्रो,

वन्द्यमानचरणः(फ्) पथि वृद्धैः ।

कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते,

गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ 21॥

उत्सवं(म्) श्रमरुचापि दृशीना-

मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक्।

दित्सयैति सुहृदाशिष एष,

देवकीजठरभूरुडुराजः॥ 22॥

वत्सलः– स्नेहिल; व्रज-गवाम्– व्रज की गौवों के प्रति; यत्— क्योंकि; अग– पर्वत को; धः- धारण करने वाले; वन्द्यमान— पूजित; चरणः- उनके पैर; पथि- रास्ते पर; वृद्धैः- वृद्ध या गुरुजनों द्वारा; कृत्स्न- सम्पूर्ण; गो-धनम्- गौवों का समूह; उपोह्य– एकत्र करके; दिन- दिन का; अन्ते- अन्त होने पर; गीता-वेणुः- अपनी वंशी बजाते हुए; अनुग- सँगियों से; ईडित– प्रशंसित; कीर्तिः– यश; उत्सवम् – उत्सव; श्रम- थकान से; रुचा- रंजित; अपि- भी; दृशीनाम्– आँखों के लिए; उन्नयन्—उठाते हुए; खुर- गौवों के खुरों से; रजः- धूल से; छुरित- सनी; त्रक्— माला; दित्सया– इच्छा से; एति— आ रहा है; सुहृत्- अपने मित्रों को; आशिषः– उनकी इच्छाएँ; एषः– यह; देवकी- माता यशोदा के; जठर—गर्भ से; भूः- उत्पन्न; उड्डु-राजः– चन्द्रमा ।

अरी सखी! श्यामसुन्दर व्रजकी गौओसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमाला पर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आह्लादित करनेवाले चन्द्रमा हम प्रेमीजनोंकी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं

मदविघूर्णितलोचन ईषन्,

मानदः(स्) स्वसुहृदां(वँ) वनमाली ।

बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं(म्),

मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ 23॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो,

यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।

मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं(म्),

मोचयन् व्रजगवां(न्) दिनतापम् ॥ 24॥

मद– नशे से; विघूर्णित– घूमती हुई; लोचनः– आँखें; ईषत्- कुछ कुछ; मान-दः- मान प्रदर्शित करते; स्व-सुहृदाम्— अपने शुभचिन्तक मित्रों को; वन-माली - वन के पुष्पों की माला पहने; बदर- बेर फल की तरह; पाण्डु– श्वेताभ; वदनः– मुख; मृदु—कोमल; गण्डम्– गाल; मण्डयन्– अलंकृत किये हुए; कनक- सुनहरे; कुण्डल– कान के आभूषणों की; लक्ष्या- शोभा से; यदु-पतिः- यदुवंश के स्वामी; द्विरद-राज- शाही हाथी की तरह; विहारः- खेलकूद; यामिनी-पतिः- रात्रि का पति; इव– सदृश; एषः- वह; दिन-अन्ते- दिन बीतने पर, संध्या समय; मुदित– प्रसन्न; वक्त्रः- मुख; उपयाति- आ रहा है; दुरन्तम्–दुर्लंघ्य; मोचयन्– भगाते हुए; व्रज- व्रज की; गवाम्– गौवों के या जिनपर कृपा की जानी है उनक; दिन-दिन के; तापम्- पीड़ादायी धूप ।

हे सखी! देखो कैसा सौन्दर्य है ! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलोंको अलङ्कृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो सखी! व्रजविभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस सन्ध्या वेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका असह्य विरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां(ङ्)

गोपिकायुगलगीतं(न्) नाम पञ्चत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥